

## संभोग : परमात्मा की सृजन-ऊर्जा

मेरे प्रिय आत्मन्!

प्रेम क्या है?

जीना और जानना तो आसान है, लेकिन कहना बहुत कठिन है। जैसे कोई मछली से पूछे कि सागर क्या है? तो मछली कह सकती है, यह है सागर, यह रहा चारों तरफ, वही है। लेकिन कोई पूछे कि कहो क्या है, बताओ मत, तो बहुत कठिन हो जाएगा मछली को।

आदमी के जीवन में भी जो श्रेष्ठ है, सुंदर है और सत्य है, उसे जीया जा सकता है, जाना जा सकता है, हुआ जा सकता है, लेकिन कहना बहुत मुश्किल है। और दुर्घटना और दुर्भाग्य यह है कि जिसमें जीया जाना चाहिए, जिसमें हुआ जाना चाहिए, उसके संबंध में मनुष्य-जाति पांच-छह हजार वर्ष से केवल बातें कर रही है।

प्रेम की बात चल रही है, प्रेम के गीत गाए जा रहे हैं, प्रेम के भजन गाए जा रहे हैं, और प्रेम का मनुष्य के जीवन में कोई स्थान नहीं है। अगर आदमी के भीतर खोजने जाएं तो प्रेम से ज्यादा असत्य शब्द दूसरा नहीं मिलेगा। और जिन लोगों ने प्रेम को असत्य सिद्ध कर दिया है और जिन्होंने प्रेम की समस्त धाराओं को अवरुद्ध कर दिया है और बड़ा दुर्भाग्य यह है कि लोग समझते हैं वे ही प्रेम के जन्मदाता भी हैं।

धर्म प्रेम की बातें करता है, लेकिन आज तक जिस प्रकार का धर्म मनुष्य-जाति के ऊपर दुर्भाग्य की भांति छाया हुआ है, उस धर्म ने ही मनुष्य के जीवन से प्रेम के सारे द्वार बंद कर दिए हैं। और न इस संबंध में पूरब और पश्चिम में कोई फर्क है, न हिंदुस्तान में और न अमेरिका में कोई फर्क है। मनुष्य के जीवन में प्रेम की धारा प्रकट ही नहीं हो पाई। और नहीं हो पाई तो हम दोष देते हैं कि मनुष्य ही बुरा है, इसलिए नहीं प्रकट हो पाई। हम दोष देते हैं कि यह मन ही जहर है, इसलिए प्रकट नहीं हो पाई।

मन जहर नहीं है। और जो लोग मन को जहर कहते रहे हैं, उन्होंने ही प्रेम को जहरीला कर दिया, प्रेम को प्रकट नहीं होने दिया है। मन जहर हो कैसे सकता है? इस जगत में कुछ भी जहर नहीं है। परमात्मा के इस सारे उपक्रम में कुछ भी विष नहीं है, सब अमृत है। लेकिन आदमी ने सारे अमृत को जहर कर लिया है। और इस जहर करने में शिक्षक, साधु-संत और तथाकथित धार्मिक लोगों का सबसे ज्यादा हाथ है।

इस बात को थोड़ा समझ लेना जरूरी है। क्योंकि अगर यह बात दिखाई न पड़े तो मनुष्य के जीवन में कभी भी प्रेम भविष्य में भी नहीं हो सकेगा। क्योंकि जिन कारणों से प्रेम नहीं पैदा हो सका है, उन्हीं कारणों को हम प्रेम प्रकट करने के आधार और कारण बना रहे हैं! हालतें ऐसी हैं कि गलत सिद्धांतों को अगर हजारों वर्ष तक दोहराया जाए तो फिर हम यह भूल ही जाते हैं कि सिद्धांत गलत हैं; और दिखाई पड़ने लगता है कि आदमी गलत है, क्योंकि उन सिद्धांतों को पूरा नहीं कर पा रहा है।

मैंने सुना है, एक सम्राट के महल के नीचे से एक पंखा बेचने वाला गुजरता था और जोर से चिल्ला रहा था कि अनूठे और अदभुत पंखे मैंने निर्मित किए हैं। ऐसे पंखे कभी भी नहीं बनाए गए। ये पंखे कभी देखे भी नहीं गए हैं। सम्राट ने खिड़की से झांक कर देखा कि कौन है जो अनूठे पंखे ले आया है! सम्राट के पास सब तरह के पंखे थे--दुनिया के कोने-कोने में जो मिल सकते थे। और नीचे देखा, गलियारे में खड़ा हुआ एक आदमी साधारण दो-दो पैसे के पंखे होंगे और चिल्ला रहा है कि अनूठे, अद्वितीय।

उस आदमी को ऊपर बुलाया और पूछा कि इन पंखों में क्या खूबी है? दाम क्या हैं इन पंखों के? उस पंखे वाले ने कहा कि महाराज, दाम ज्यादा नहीं हैं। पंखे को देखते हुए दाम बहुत कम हैं, सिर्फ सौ रुपये का पंखा है। सम्राट ने कहा, सौ रुपये! यह दो पैसे का पंखा, जो बाजार में जगह-जगह मिलता है, और सौ रुपये दाम! क्या है इसकी खूबी? उस आदमी ने कहा, खूबी! यह पंखा सौ वर्ष चलता है। सौ वर्ष के लिए गारंटी है। सौ वर्ष से कम में खराब नहीं होता है। सम्राट ने कहा, इसको देख कर तो ऐसा लगता है कि यह सप्ताह भी चल जाए पूरा तो मुश्किल है। धोखा देने की कोशिश कर रहे हो? सरासर बेईमानी, और वह भी सम्राट के सामने! उस आदमी ने कहा, आप मुझे भलीभांति जानते हैं, इसी गलियारे में रोज पंखे बेचता हूं। सौ रुपये दाम हैं इसके और अगर सौ वर्ष न चले तो जिम्मेवार मैं हूं। रोज तो नीचे मौजूद होता हूं। और फिर आप सम्राट हैं, आपको धोखा देकर जाऊंगा कहां?

वह पंखा खरीद लिया गया। सम्राट को विश्वास तो न था, लेकिन आश्चर्य भी था कि यह आदमी सरासर झूठ बोल रहा है, किस बल पर बोल रहा है! पंखा सौ रुपये में खरीद लिया गया और उससे कहा कि सातवें दिन तुम उपस्थित हो जाना।

दो-चार दिन में ही पंखे की डंडी बाहर निकल गई। सातवें दिन तो वह बिल्कुल मुर्दा हो गया। लेकिन सम्राट ने सोचा कि शायद पंखे वाला आएगा नहीं। लेकिन ठीक समय पर सातवें दिन वह पंखे वाला हाजिर हो गया और उसने कहा, कहो महाराज!

उन्होंने कहा, कहना नहीं है, यह पंखा पड़ा हुआ है टूटा हुआ। यह सात दिन में ही यह गति हो गई, तुम कहते सौ वर्ष चलेगा। पागल हो या धोखेबाज? क्या हो?

उस आदमी ने कहा कि मालूम होता है आपको पंखा झलना नहीं आता है। पंखा तो सौ वर्ष चलता ही। पंखा तो गारंटीड है। आप पंखा झलते कैसे थे?

सम्राट ने कहा, और भी सुनो, अब मुझे यह भी सीखना पड़ेगा कि पंखा कैसे किया जाता है!

उस आदमी ने कहा, कृपा करके बताइए कि इस पंखे की गति सात दिन में ऐसी कैसे बना दी आपने? किस भांति पंखा किया?

सम्राट ने पंखा उठा कर करके दिखाया कि इस भांति मैंने पंखा किया है।

उस आदमी ने कहा, समझ गया भूल। इस तरह पंखा नहीं किया जाता।

सम्राट ने कहा, और क्या रास्ता है पंखा झलने का?

उस आदमी ने कहा, पंखा पकड़िए सामने और सिर को हिलाइए। पंखा सौ वर्ष चलेगा। आप समाप्त हो जाएंगे, लेकिन पंखा बचेगा। पंखा गलत नहीं है, आपके झलने का ढंग गलत है।

यह आदमी पैदा हुआ है--पांच-छह हजार या दस हजार वर्ष की संस्कृति का यह आदमी फल है। लेकिन संस्कृति गलत नहीं है, यह आदमी गलत है। आदमी मरता जा रहा है रोज और संस्कृति की दुहाई चलती चली जाती है--कि महान संस्कृति, महान धर्म, महान सब कुछ! और उसका यह फल है आदमी, उसी संस्कृति से गुजरा है और यह परिणाम है उसका। लेकिन नहीं, आदमी गलत है और आदमी को बदलना चाहिए अपने को। और कोई कहने की हिम्मत नहीं उठाता कि कहीं ऐसा तो नहीं है कि दस हजार वर्षों में जो संस्कृति और धर्म आदमी को प्रेम से नहीं भर पाए वह संस्कृति और धर्म गलत हों! और अगर दस हजार वर्षों में आदमी प्रेम से नहीं भर पाया तो आगे कोई संभावना है इसी धर्म और इसी संस्कृति के आधार पर कि आदमी कभी प्रेम से भर जाए?

दस हजार वर्षों में जो नहीं हो पाया, वह आगे भी दस हजार वर्षों में होने वाला नहीं है। क्योंकि आदमी यही है, कल भी यही होगा आदमी। आदमी हमेशा से यही है और हमेशा यही होगा। और संस्कृति और धर्म, जिनके हम नारे दिए चले जाते हैं, और संतों और महात्माओं की जिनकी दुहाइयां दिए चले जाते हैं... सोचने के लिए हम तैयार नहीं कि कहीं हमारे बुनियादी चिंतन की दिशा ही तो गलत नहीं है?

मैं कहना चाहता हूं कि वह गलत है। और गलत का सबूत है यह आदमी। और क्या सबूत होता है? एक बीज को हम बोएं और फल जहरीले और कड़वे हों तो क्या सिद्ध होता है? सिद्ध होता है कि वह बीज जहरीला और कड़वा रहा होगा। हालांकि बीज में पता लगाना मुश्किल है कि उससे जो फल पैदा होंगे, वे कड़वे पैदा होंगे। बीज में कुछ खोजबीन नहीं की जा सकती। बीज को तोड़ो-फोड़ो, कोई पता नहीं चल सकता कि इससे जो फल पैदा होंगे, वे कड़वे होंगे। बीज को बोओ, सौ वर्ष लग जाएंगे--वृक्ष होगा, बड़ा होगा, आकाश में फैलेगा, तब फल आएंगे--और तब पता चलेगा कि वे कड़वे हैं।

दस हजार वर्ष में संस्कृति और धर्म के जो बीज बोए गए हैं, यह आदमी उसका फल है और यह कड़वा है और घृणा से भरा हुआ है। लेकिन उसी की दुहाई दिए चले जाते हैं हम और सोचते हैं कि उससे प्रेम हो जाएगा। मैं आपसे कहना चाहता हूं, उससे प्रेम नहीं हो सकता है। क्योंकि प्रेम के पैदा होने की जो बुनियादी संभावना है, धर्मों ने उसकी ही हत्या कर दी है और उसमें ही जहर घोल दिया है।

मनुष्य से भी ज्यादा प्रेम पशु और पक्षियों में और पौधों में दिखाई पड़ता है; जिनके पास न कोई संस्कृति है, न कोई धर्म है। संस्कृत और सुसंस्कृत और सभ्य मनुष्यों की बजाय असभ्य और जंगल के आदमी में ज्यादा प्रेम दिखाई पड़ता है; जिसके पास न कोई विकसित धर्म है, न कोई सभ्यता है, न कोई संस्कृति है। जितना आदमी सभ्य, सुसंस्कृत और तथाकथित धर्मों के प्रभाव में मंदिरों और चर्चों में प्रार्थना करने लगता है, उतना ही प्रेम से शून्य क्यों होता चला जाता है?

जरूर कुछ कारण हैं। और दो कारणों पर मैं विचार करना चाहता हूं। अगर वे ख्याल में आ जाएं तो प्रेम के अवरुद्ध स्रोत टूट सकते हैं और प्रेम की गंगा बह सकती है। वह हर आदमी के भीतर है, उसे कहीं से लाना नहीं है। प्रेम कोई ऐसी बात नहीं है कि कहीं खोजने जाना है उसे। वह है। वह प्राणों की प्यास है हर एक के भीतर, वह प्राणों की सुगंध है प्रत्येक के भीतर। लेकिन चारों तरफ से परकोटा है उसके और वह प्रकट नहीं हो पाती। सब तरफ पत्थर की दीवार है और वे झरने नहीं फूट पाते। तो प्रेम की खोज और प्रेम की साधना कोई पाजिटिव, कोई विधायक खोज और साधना नहीं है कि हम जाएं और कहीं प्रेम सीख लें।

एक मूर्तिकार एक पत्थर को तोड़ रहा था। कोई देखने गया था कि मूर्ति कैसे बनाई जाती है। उसने देखा कि मूर्ति तो बिल्कुल नहीं बनाई जा रही है; सिर्फ छैनी और हथौड़े से पत्थर तोड़ा जा रहा है। तो उस आदमी ने पूछा कि यह आप क्या कर रहे हैं? मूर्ति नहीं बनाएंगे! मैं तो मूर्ति का बनना देखने आया हूं। आप तो सिर्फ पत्थर तोड़ रहे हैं।

उस मूर्तिकार ने कहा कि मूर्ति तो पत्थर के भीतर छिपी है, उसे बनाने की जरूरत नहीं है; सिर्फ उसके ऊपर जो व्यर्थ पत्थर जुड़ा है उसे अलग कर देने की जरूरत है और मूर्ति प्रकट हो जाएगी। मूर्ति बनाई नहीं जाती, मूर्ति सिर्फ आविष्कृत होती है, डिस्कवर होती है, अनावृत होती है, उघाड़ी जाती है।

मनुष्य के भीतर प्रेम छिपा है, सिर्फ उघाड़ने की बात है। उसे पैदा करने का सवाल नहीं है, अनावृत करने की बात है। कुछ है जो हमने ऊपर से ओढ़ा हुआ है, जो उसे प्रकट नहीं होने देता।

एक चिकित्सक से जाकर आप पूछें कि स्वास्थ्य क्या है? और दुनिया का कोई चिकित्सक नहीं बता सकता कि स्वास्थ्य क्या है। बड़े आश्चर्य की बात है! स्वास्थ्य पर ही तो सारा चिकित्सा-शास्त्र खड़ा है, सारी मेडिकल साइंस खड़ी है और कोई नहीं बता सकता कि स्वास्थ्य क्या है। लेकिन चिकित्सक से पूछें कि स्वास्थ्य क्या है? तो वह कहेगा, बीमारियों के बाबत हम बता सकते हैं कि बीमारियां क्या हैं, उनके लक्षण हमें पता हैं, एक-एक बीमारी की अलग-अलग परिभाषा हमें पता है। स्वास्थ्य? स्वास्थ्य का हमें कोई भी पता नहीं है। इतना हम कह सकते हैं कि जब कोई बीमारी नहीं होती, तो जो होता है, वह स्वास्थ्य है।

स्वास्थ्य तो मनुष्य के भीतर छिपा है, इसलिए मनुष्य की परिभाषा के बाहर है। बीमारी बाहर से आती है, इसलिए बाहर से परिभाषा की जा सकती है। स्वास्थ्य भीतर से आता है, उसकी कोई परिभाषा नहीं की जा सकती। इतना ही हम कह सकते हैं कि बीमारियों का अभाव स्वास्थ्य है। लेकिन यह स्वास्थ्य की कहां परिभाषा हुई? स्वास्थ्य के संबंध में तो हमने कुछ भी न कहा। कहा कि बीमारियां नहीं हैं, तो बीमारियों के संबंध में कहा। सच यह है कि स्वास्थ्य पैदा नहीं करना होता, या तो छिप जाता है बीमारियों में या बीमारियां हट जाती हैं तो प्रकट हो जाता है।

स्वास्थ्य हममें है। स्वास्थ्य हमारा स्वभाव है।

प्रेम हममें है। प्रेम हमारा स्वभाव है।

इसलिए यह बात गलत है कि मनुष्य को समझाया जाए कि तुम प्रेम पैदा करो। सोचना यह है कि प्रेम पैदा क्यों नहीं हो पा रहा है? बाधा क्या है? अड़चन क्या है? कहां रुकावट डाल दी गई है? अगर कोई भी रुकावट न हो तो प्रेम प्रकट होगा ही, उसे सिखाने की और समझाने की कोई भी जरूरत नहीं है। अगर मनुष्य के ऊपर गलत संस्कृति और गलत संस्कार की धाराएं और बाधाएं न हों, तो हर आदमी प्रेम को उपलब्ध होगा ही। यह अनिवार्यता है। प्रेम से कोई बच ही नहीं सकता। प्रेम स्वभाव है।

गंगा बहती है हिमालय से। बहेगी गंगा, उसके प्राण हैं, उसके पास जल है। वह बहेगी और सागर को खोज ही लेगी। न किसी पुलिसवाले से पूछेगी, न किसी पुरोहित से पूछेगी कि सागर कहां है? देखा किसी गंगा को चौरस्ते पर खड़े होकर पूछते कि सागर कहां है? उसके प्राणों में है छिपी सागर की खोज और ऊर्जा है, तो पहाड़ तोड़ेगी, मैदान तोड़ेगी और पहुंच जाएगी सागर तक। सागर कितना ही दूर हो, कितना ही छिपा हो, खोज ही लेगी। और कोई रास्ता नहीं है, कोई गाइड-बुक नहीं है कि जिससे पता लगा ले कि कहां से जाना है, लेकिन पहुंच जाती है।

लेकिन बांध बांध दिए जाएं, चारों तरफ परकोटे उठा दिए जाएं। प्रकृति की बाधाओं को तोड़ कर तो गंगा सागर तक पहुंच जाती है, लेकिन अगर आदमी की इंजीनियरिंग की बाधाएं खड़ी कर दी जाएं, तो हो सकता है गंगा सागर तक न पहुंच पाए। यह भेद समझ लेना जरूरी है।

प्रकृति की कोई भी बाधा असल में बाधा नहीं है, इसलिए गंगा सागर तक पहुंच जाती है, हिमालय को काट कर पहुंच जाती है। लेकिन अगर आदमी ईजाद करे, इंतजाम करे, तो गंगा को सागर तक नहीं भी पहुंचने दे सकता है।

प्रकृति का तो एक सहयोग है, प्रकृति तो एक हार्मनी है। वहां जो बाधा भी दिखाई पड़ती है, वह भी शायद शक्ति को जगाने के लिए चुनौती है। वहां जो विरोध भी दिखाई पड़ता है, वह भी शायद भीतर प्राणों में जो छिपा है, उसे प्रकट करने के लिए बुलावा है। वहां शायद कोई बाधा नहीं है। वहां हम बीज को दबाते हैं जमीन में; दिखाई पड़ता है कि जमीन की एक पर्त बीज के ऊपर पड़ी है, बाधा दे रही है। लेकिन वह बाधा नहीं

दे रही। अगर वह पर्त न होगी, तो बीज अंकुरित भी नहीं हो पाएगा। ऐसे दिखाई पड़ता है कि एक पर्त जमीन की बीज को नीचे दबा रही है। लेकिन वह पर्त दबा इसलिए रही है, ताकि बीज दबे, गले और टूट जाए और अंकुर बन जाए। ऊपर से दिखाई पड़ता है कि वह जमीन बाधा दे रही है, लेकिन वह जमीन मित्र है और सहयोग कर रही है बीज को प्रकट करने में।

प्रकृति तो एक हार्मनी है, एक संगीतपूर्ण लयबद्धता है।

लेकिन आदमी ने जो-जो निसर्ग के ऊपर इंजीनियरिंग की है, जो-जो उसने अपनी यांत्रिक धारणाओं को ठोकने की और बिठाने की कोशिश की है, उससे गंगाएं रुक गई हैं, जगह-जगह अवरुद्ध हो गई हैं। और फिर आदमी को दोष दिया जाता है। किसी बीज को दोष देने की जरूरत नहीं है। अगर वह पौधा न बन पाए, तो हम कहेंगे कि जमीन नहीं मिली होगी ठीक, पानी नहीं मिला होगा ठीक, सूरज की रोशनी नहीं मिली होगी ठीक। लेकिन आदमी के जीवन में खिल न पाए फूल प्रेम का, तो हम कहते हैं--तुम हो जिम्मेवार। और कोई नहीं कहता कि भूमि न मिली होगी ठीक, पानी न मिला होगा ठीक, सूरज की रोशनी न मिली होगी ठीक; इसलिए यह आदमी का पौधा अवरुद्ध रह गया, विकसित नहीं हो पाया, फूल तक नहीं पहुंच पाया।

मैं आपसे कहना चाहता हूं कि बुनियादी बाधाएं आदमी ने खड़ी की हैं। प्रेम की गंगा तो बह सकती है और परमात्मा के सागर तक पहुंच सकती है। आदमी बना इसलिए है कि वह बहे और प्रेम बहे और परमात्मा तक पहुंच जाए। लेकिन हमने कौन सी बाधाएं खड़ी कर दी हैं?

पहली बात, आज तक मनुष्य की सारी संस्कृतियों ने सेक्स का, काम का, वासना का विरोध किया है। इस विरोध ने, मनुष्य के भीतर प्रेम के जन्म की संभावना तोड़ दी, नष्ट कर दी--इस निषेध ने! क्योंकि सच्चाई यह है कि प्रेम की सारी यात्रा का प्राथमिक बिंदु काम है, सेक्स है। प्रेम की यात्रा का जन्म, गंगोत्री--जहां से गंगा पैदा होगी प्रेम की--वह सेक्स है, वह काम है। और उसके सब दुश्मन हैं--सारी संस्कृतियां, और सारे धर्म, और सारे गुरु, और सारे महात्मा--तो गंगोत्री पर ही चोट कर दी, वहीं रोक दिया। पाप है काम, अधम है काम, जहर है काम। और हमने सोचा भी नहीं कि काम की ऊर्जा ही, सेक्स एनर्जी ही अंततः प्रेम में परिवर्तित होती और रूपांतरित होती है। प्रेम का जो विकास है, वह काम की शक्ति का ही ट्रांसफॉर्मेशन है, वह उसी का रूपांतरण है।

एक कोयला पड़ा हो और आपको ख्याल भी नहीं आएगा कि कोयला ही रूपांतरित होकर हीरा बन जाता है। हीरे और कोयले में बुनियादी रूप से कोई भी फर्क नहीं है। हीरे में भी वे ही तत्व हैं जो कोयले में हैं। और कोयला हजारों वर्ष की प्रक्रिया से गुजर कर हीरा बन जाता है। लेकिन कोयले की कोई कीमत नहीं है, उसे कोई घर में रखता भी है तो ऐसी जगह जहां दिखाई न पड़े। और हीरे को लोग छातियों पर लटका कर घूमते हैं, कि वह दिखाई पड़े। और हीरा और कोयला एक ही हैं! लेकिन कोई दिखाई नहीं पड़ता कि इन दोनों के बीच अंतर्संबंध है, एक यात्रा है।

कोयले की शक्ति ही हीरा बनती है। और अगर आप कोयले के दुश्मन हो गए--जो कि हो जाना बिल्कुल आसान है, क्योंकि कोयले में कुछ भी नहीं दिखाई पड़ता--तो हीरे के पैदा होने की संभावना भी समाप्त हो गई, क्योंकि कोयला ही हीरा बन सकता था।

सेक्स की शक्ति ही, काम की शक्ति ही प्रेम बनती है।

लेकिन उसके विरोध में हैं, सारे दुश्मन हैं उसके। अच्छे आदमी उसके दुश्मन हैं। और उसके विरोध ने प्रेम के अंकुर भी नहीं फूटने दिए। और जमीन से, प्रथम से, पहली सीढ़ी से नष्ट कर दिया भवन को। फिर वह हीरा

नहीं बन पाता कोयला, क्योंकि उसके बनने के लिए जो स्वीकृति चाहिए, जो उसका विकास चाहिए, जो उसको रूपांतरित करने की प्रक्रिया चाहिए, उसका सवाल ही नहीं उठता। जिसके हम दुश्मन हो गए, जिसके हम शत्रु हो गए, जिससे हमारी द्वंद्व की स्थिति बन गई और जिससे हम निरंतर लड़ने लगे--अपनी ही शक्ति से आदमी को लड़ा दिया गया है, सेक्स की शक्ति से आदमी को लड़ा दिया गया है। और शिक्षाएं दी जाती हैं कि द्वंद्व छोड़ना चाहिए, कांफ्लिक्ट छोड़नी चाहिए, लड़ना नहीं चाहिए। और सारी शिक्षाएं बुनियाद में सिखा रही हैं कि लड़ो।

मन जहर है; तो मन से लड़ो। जहर से तो लड़ना पड़ेगा। सेक्स पाप है; तो उससे लड़ो। और ऊपर से कहा जा रहा है कि द्वंद्व छोड़ो। जिन शिक्षाओं के आधार पर मनुष्य द्वंद्व से भर रहा है, वे ही शिक्षाएं दूसरी तरफ कह रही हैं कि द्वंद्व छोड़ो। एक तरफ आदमी को पागल बनाओ और दूसरी तरफ पागलखाने खोलो कि उनका इलाज करना है! एक तरफ कीटाणु फैलाओ बीमारियों के और फिर अस्पताल खोलो कि बीमारियों का इलाज यहां किया जाता है!

एक बात समझ लेनी जरूरी है इस संबंध में।

मनुष्य कभी भी काम से मुक्त नहीं हो सकेगा। काम उसके जीवन का प्राथमिक बिंदु है, उसी से जन्म होता है। परमात्मा ने काम की शक्ति को ही, सेक्स को ही सृष्टि का मूल बिंदु स्वीकार किया है। और परमात्मा जिसे पाप नहीं समझ रहा है, महात्मा उसे पाप बता रहे हैं! अगर परमात्मा उसे पाप समझता है, तो परमात्मा से बड़ा पापी इस पृथ्वी पर, इस जगत में, इस विश्व में कोई भी नहीं है।

फूल खिला हुआ दिखाई पड़ रहा है। कभी सोचा है कि फूल का खिल जाना भी सेक्सुअल एक्ट है! फूल का खिल जाना भी काम की एक घटना है, वासना की एक घटना है! फूल में है क्या--उसके खिल जाने में? उसके खिल जाने में कुछ भी नहीं है, वे बिंदु हैं पराग के, वीर्य के कण हैं, जिन्हें तितलियां उड़ा कर दूसरे फूलों पर ले जाएंगी और नया जन्म देंगी।

एक मोर नाच रहा है--और कवि गीत गा रहे हैं और संत भी देख कर प्रसन्न होंगे। लेकिन उन्हें ख्याल नहीं कि नृत्य एक सेक्सुअल एक्ट है। मोर पुकार रहा है अपनी प्रेयसी को या अपने प्रेमी को। वह नृत्य किसी को रिझाने के लिए है। पपीहा गीत गा रहा है; कोयल बोल रही है; एक आदमी जवान हो गया है; एक युवती सुंदर होकर विकसित हो गई है। वे सब की सब सेक्सुअल एनर्जी की अभिव्यक्तियां हैं। वह सब का सब काम का ही रूपांतरण है। यह सब का सब काम की ही अभिव्यक्ति, काम की ही अभिव्यंजना है। सारा जीवन, सारी अभिव्यक्ति, सारी फ्लावरिंग काम की है।

और उस काम के खिलाफ संस्कृति और धर्म आदमी के मन में जहर डाल रहे हैं। उससे लड़ाने की कोशिश कर रहे हैं। मौलिक शक्ति से मनुष्य को उलझा दिया है लड़ने के लिए। इसलिए मनुष्य दीन-हीन, प्रेम से रिक्त और थोथा और ना-कुछ हो गया है।

काम से लड़ना नहीं है, काम के साथ मैत्री स्थापित करनी है और काम की धारा को और ऊंचाइयों तक ले जाना है। किसी ऋषि ने किसी वधू को, नव वर और वधू को आशीर्वाद देते हुए कहा था कि तेरे दस पुत्र पैदा हों और अंततः तेरा पति तेरा ग्यारहवां पुत्र हो जाए।

वासना रूपांतरित हो, तो पत्नी मां बन सकती है।

वासना रूपांतरित हो, तो काम प्रेम बन सकता है।

लेकिन काम ही प्रेम बनता है, काम की ऊर्जा ही प्रेम की ऊर्जा में विकसित होती है, फलित होती है। लेकिन हमने मनुष्य को भर दिया है काम के विरोध में। इसका परिणाम यह हुआ कि प्रेम तो पैदा नहीं हो सका--क्योंकि वह तो आगे का विकास था, काम की स्वीकृति से आता--प्रेम तो विकसित नहीं हुआ और काम के विरोध में खड़े होने के कारण मनुष्य का चित्त ज्यादा से ज्यादा कामुक और सेक्सुअल होता चला गया। हमारे सारे गीत, हमारी सारी कविताएं, हमारे चित्र, हमारी पेंटिंग्स, हमारे मंदिर, हमारी मूर्तियां सब घूम-फिर कर सेक्स के आस-पास केंद्रित हो गईं। हमारा मन ही सेक्स के आस-पास केंद्रित हो गया। इस जगत में कोई भी पशु मनुष्य की भांति सेक्सुअल नहीं है। मनुष्य चौबीस घंटे सेक्सुअल हो गया। उठते-बैठते, सोते-जागते सेक्स ही सब कुछ हो गया। उसके प्राण में एक घाव हो गया--विरोध के कारण, दुश्मनी के कारण, शत्रुता के कारण। जो जीवन का मूल था, उससे मुक्त तो हुआ नहीं जा सकता था, लेकिन उससे लड़ने की चेष्टा में सारा जीवन रुग्ण जरूर हो सकता था, वह रुग्ण हो गया है।

और यह जो मनुष्य-जाति इतनी ज्यादा कामुक दिखाई पड़ रही है, इसके पीछे तथाकथित धर्मों और संस्कृति का बुनियादी हाथ है। इसके पीछे बुरे लोगों का नहीं, सज्जनों और संतों का हाथ है। और जब तक मनुष्य-जाति सज्जनों और संतों के इस अनाचार से मुक्त नहीं होती, तब तक प्रेम के विकास की कोई संभावना नहीं है।

मुझे एक घटना याद आती है। एक फकीर अपने घर से निकला था, किसी मित्र के पास मिलने जा रहा था। निकला है कि घोड़े पर उसका चढ़ा हुआ एक बचपन का दोस्त घर आकर सामने खड़ा हो गया है। उसने कहा कि दोस्त, तुम घर पर रुको, वर्षों से प्रतीक्षा करता था कि तुम आओगे तो बैठेंगे और बात करेंगे, और दुर्भाग्य कि मुझे किसी मित्र से मिलने जाना है। मैं वचन दे चुका हूं तो मैं वहां जाऊंगा। घंटे भर में जल्दी से जल्दी लौट आऊंगा, तब तक तुम विश्राम करो।

उसके मित्र ने कहा कि मुझे तो चैन नहीं है, अच्छा होगा कि मैं तुम्हारे साथ ही चला चलूं। लेकिन उसने कहा कि मेरे कपड़े सब गंदे हो गए हैं धूल से रास्ते की। अगर तुम्हारे पास कुछ अच्छा कपड़ा हो तो मुझे दे दो, तो मैं डाल लूं और साथ हो जाऊं।

निश्चित था उस फकीर के पास। किसी सम्राट ने उसे एक बहुमूल्य कोट, एक पगड़ी और धोती भेंट की थी। उसने सम्हाल कर रखी थी, कभी जरूरत पड़ेगी तो पहनूंगा। वह जरूरत नहीं आई थी। निकाल कर ले आया खुशी में।

मित्र ने जब पहन लिए, तब उसे थोड़ी ईर्ष्या पैदा हुई। मित्र ने पहन कर... तो मित्र सम्राट मालूम होने लगा। बहुमूल्य कोट था, पगड़ी थी, धोती थी, शानदार जूते थे। और उसके सामने वह फकीर बिल्कुल ही नौकर-चाकर, दीन-हीन दिखाई पड़ने लगा। उसने सोचा कि यह तो बड़ा मुश्किल हुआ, यह तो बड़ा गलत हुआ। जिनके घर मैं ले जाऊंगा, ध्यान इस पर जाएगा, मुझ पर किसी का भी ध्यान जाएगा नहीं। अपने ही कपड़े और आज अपने ही कपड़ों के कारण मैं दीन-हीन हो जाऊंगा।

लेकिन बार-बार मन को समझाया कि मैं फकीर हूं, आत्मा-परमात्मा की बात करने वाला। क्या रखा है कोट में, पगड़ी में, छोड़ो! पहने रहने दो, कितना फर्क पड़ता है! लेकिन जितना समझाने की कोशिश की कि कोट-पगड़ी में क्या रखा है, कोट-पगड़ी, कोट-पगड़ी ही उसके मन में घूमने लगी।

मित्र दूसरी बात करने लगा। लेकिन वह भीतर तो... ऊपर तो कुछ और दूसरी बातें कर रहा है, लेकिन वहां उसका मन नहीं है। भीतर उसे बस कोट और पगड़ी! रास्ते पर जो भी आदमी देखता है, उसको कोई भी

नहीं देखता, मित्र की तरफ सबकी आंखें जाती हैं। वह बड़ी मुश्किल में पड़ गया कि यह तो आज भूल कर ली-- अपने हाथ से भूल कर ली। जिनके घर जाना था, वहां पहुंचा। जाकर परिचय दिया कि मेरे मित्र हैं जमाल, बचपन के दोस्त हैं, बहुत प्यारे आदमी हैं। और फिर अचानक अनजाने मुंह से निकल गया कि रह गए कपड़े, सो कपड़े मेरे हैं। क्योंकि मित्र भी, जिनके घर गए थे, वे भी उसके कपड़ों को देख रहे थे! और भीतर उसके चल रहा था : कोट-पगड़ी। मेरी कोट-पगड़ी, और उन्हीं की वजह से मैं परेशान हो रहा हूं। निकल गया मुंह से कि रह गए कपड़े, कपड़े मेरे हैं!

मित्र भी हैरान हुआ, घर के लोग भी हैरान हुए कि यह क्या पागलपन की बात है। ख्याल उसको भी आया बोल जाने के बाद, तब पछताया कि यह तो भूल हो गई। पछताया तो और दबाया अपने मन को। बाहर निकल कर क्षमा मांगने लगा कि क्षमा कर दो, बड़ी गलती हो गई। मित्र ने कहा, मैं तो हैरान हुआ कि तुमसे निकल कैसे गया? उसने कहा कि कुछ नहीं, सिर्फ जबान की चूक हो गई। हालांकि जबान की चूक कभी भी नहीं होती है। भीतर कुछ चलता होता है, तो कभी-कभी बेमौके जबान से निकल जाता है। चूक कभी नहीं होती है। माफ कर दो, भूल हो गई। कैसे यह ख्याल आ गया, कुछ समझ में नहीं आता। हालांकि पूरी तरह समझ में आ रहा था कि ख्याल कैसे आया है!

दूसरे मित्र के घर गए। अब वह तय करता रहा रास्ते में कि अब चाहे कुछ भी हो जाए, यह नहीं कहना है कि कपड़े मेरे हैं, पक्का कर लेना है अपने मन को। घर के द्वार पर उसने जाकर बिल्कुल दृढ़ संकल्प कर लिया कि यह बात नहीं उठानी है कि कपड़े मेरे हैं।

लेकिन उस पागल को पता नहीं कि जितना वह दृढ़ संकल्प कर रहा है इस बात का, वह दृढ़ संकल्प बता रहा है इस बात को कि उतने ही जोर से उसके भीतर यह भावना घर कर रही है कि ये कपड़े मेरे हैं। आखिर दृढ़ संकल्प किया क्यों जाता है?

एक आदमी कहता है कि मैं ब्रह्मचर्य का दृढ़ व्रत लेता हूं! उसका मतलब है कि उसके भीतर कामुकता दृढ़ता से धक्के मार रही है। नहीं तो और कारण क्या है? एक आदमी कहता है कि मैं कसम खाता हूं कि आज से कम खाना खाऊंगा! उसका मतलब यह है कि कसम खानी पड़ रही है, ज्यादा खाने का मन है उसका। और तब अनिवार्यरूपेण द्वंद्व पैदा होता है। जिससे हम लड़ना चाहते हैं, वही हमारी कमजोरी है। और तब द्वंद्व पैदा हो जाना स्वाभाविक है।

वह लड़ता हुआ दरवाजे के भीतर गया, सम्हल-सम्हल कर बोला कि मेरे मित्र हैं। लेकिन जब वह बोल रहा है, तब उसको कोई नहीं देख रहा है, उसके मित्र को ही उस घर के लोग देख रहे हैं। तब फिर उसे ख्याल आया--कि मेरा कोट, मेरी पगड़ी। उसने कहा कि दृढ़ता से कसम खाई है, इसकी बात नहीं उठानी है। मेरा क्या है कपड़ा-लत्ता! कपड़े-लत्ते किसी के होते हैं! यह तो सब संसार है, यह तो सब माया है! लेकिन यह सब समझा रहा है। लेकिन असलियत तो बाहर से भीतर, भीतर से बाहर हो रही है। समझाया कि मेरे मित्र हैं, बचपन के दोस्त हैं, बहुत प्यारे आदमी हैं; रह गए कपड़े, कपड़े उन्हीं के हैं, मेरे नहीं हैं। पर घर के लोगों को ख्याल आया कि कपड़े उन्हीं के हैं, मेरे नहीं हैं--आज तक ऐसा परिचय कभी देखा नहीं गया था।

बाहर निकल कर क्षमा मांगने लगा कि बड़ी भूल हुई जा रही है, मैं क्या करूं, क्या न करूं, यह क्या हो गया है मुझे। आज तक मेरी जिंदगी में कपड़ों ने इस तरह से मुझे नहीं पकड़ा था। किसी को नहीं पकड़ा है, लेकिन अगर तरकीब उपयोग में करें तो कपड़े पकड़ ले सकते हैं। मित्र ने कहा, मैं जाता नहीं तुम्हारे साथ। पर वह हाथ जोड़ने लगा कि नहीं, ऐसा मत करो। जीवन भर के लिए दुख रह जाएगा कि मैंने क्या दुर्व्यवहार



किया। अब मैं कसम खाकर कहता हूँ कि कपड़ों की बात ही नहीं उठानी है, मैं बिल्कुल भगवान की कसम खाता हूँ कि कपड़ों की बात नहीं उठानी है।

और कसम खाने वालों से हमेशा सावधान रहना जरूरी है; क्योंकि जो भी कसम खाता है, उसके भीतर उस कसम से भी मजबूत कोई बैठा है, जिसके खिलाफ वह कसम खा रहा है। और वह जो भीतर बैठा है वह ज्यादा भीतर है, कसम ऊपर है और बाहर है। कसम चेतन मन से खाई गई है। और जो भीतर बैठा है, वह अचेतन की परतों तक समाया हुआ है। अगर मन के दस हिस्से कर दें, तो कसम एक हिस्से ने खाई है, नौ हिस्सा उलटा भीतर खड़ा हुआ है। ब्रह्मचर्य की कसमें एक हिस्सा खा रहा है मन का और नौ हिस्सा परमात्मा की दुहाई दे रहा है, वह जो परमात्मा ने बनाया है वह उसके लिए ही कहे चला जा रहा है।

गए तीसरे मित्र के घर। अब उसने बिल्कुल ही अपनी सांसों तक पर संयम कर रखा है।

संयमी आदमी बड़े खतरनाक होते हैं; क्योंकि उनके भीतर ज्वालामुखी उबल रहा है, और ऊपर से वे संयम साधे हुए हैं। और इस बात को स्मरण रखना कि जिस चीज को साधना पड़ता है--साधने में इतना श्रम लग जाता है कि साधना पूरे वक्त हो नहीं सकती। फिर शिथिल होना पड़ेगा, विश्राम करना पड़ेगा। अगर मैं जोर से मुट्ठी बांध लूं, तो कितनी देर बांधे रख सकता हूँ? चौबीस घंटे? जितनी जोर से बांधूंगा, उतनी ही जल्दी थक जाऊंगा और मुट्ठी खुल जाएगी।

जिस चीज में भी श्रम करना पड़ता है, जितना ज्यादा श्रम करना पड़ता है, उतनी जल्दी थकान आ जाती है, शक्ति खतम हो जाती है और उलटा होना शुरू हो जाता है। मुट्ठी बांधी जितनी जोर से, उतनी ही जल्दी मुट्ठी खुल जाएगी। मुट्ठी खुली रखी जा सकती है चौबीस घंटे, लेकिन बांध कर नहीं रखी जा सकती है। जिस काम में श्रम पड़ता है, उस काम को आप जीवन नहीं बना सकते, कभी सहज नहीं हो सकता वह काम। श्रम पड़ेगा, फिर विश्राम का वक्त आएगा ही।

इसलिए जितना सधा हुआ संत होता है उतना ही खतरनाक आदमी होता है; क्योंकि उसका विश्राम का वक्त आएगा, चौबीस घंटे में घंटे भर को उसे शिथिल होना पड़ेगा। उसी बीच दुनिया भर के पाप उसके भीतर खड़े हो जाएंगे। नरक सामने आ जाएगा।

तो उसने बिल्कुल ही अपने को सांस-सांस रोक लिया और कहा कि अब कसम खाता हूँ कि इन कपड़ों की बात ही नहीं उठानी है।

लेकिन आप सोच लें उसकी हालत! अगर आप थोड़े-बहुत भी धार्मिक आदमी होंगे, तो आपको अपने अनुभव से भी पता चल सकता है कि उसकी क्या हालत हुई होगी। अगर आपने कसम खाई हो, व्रत लिए हों, संकल्प साधे हों, तो आपको भलीभांति पता होगा कि भीतर क्या हालत हो जाती है।

भीतर गया। उसके माथे से पसीना चू रहा है। इतना श्रम पड़ रहा है। मित्र डरा हुआ है उसके पसीने को देख कर कि वह उसकी सब नसें खिंची हुई हैं। वह बोल रहा है एक-एक शब्द--कि मेरे मित्र हैं, बड़े पुराने दोस्त हैं, बहुत अच्छे आदमी हैं। और एक क्षण को वह रुका। जैसे भीतर से कोई जोर का धक्का आया हो और सब बह गया, बाढ़ आ गई और सब बह गया हो। और उसने कहा कि रह गई कपड़ों की बात, तो मैंने कसम खा ली है कि कपड़ों की बात ही नहीं करनी है।

यह जो इस आदमी के साथ हुआ, वह पूरी मनुष्य-जाति के साथ सेक्स के संबंध में हो गया है। सेक्स को आब्सेशन बना दिया, सेक्स को रोग बना दिया, घाव बना दिया और सब विषाक्त कर दिया। सब विषाक्त कर दिया। छोटे-छोटे बच्चों को समझाया जा रहा है कि सेक्स पाप है। लड़कियों को समझाया जा रहा है, लड़कों को

समझाया जा रहा है कि सेक्स पाप है। फिर यह लड़की जवान होगी, यह लड़का जवान होगा; इनकी शादियां होंगी और सेक्स की दुनिया शुरू होगी। और इन दोनों के भीतर यह भाव है कि यह पाप है। और फिर कहा जाएगा स्त्री को कि पति को परमात्मा माना जो पाप में ले जा रहा है उसको परमात्मा कैसे माना जा सकता है? यह कैसे संभव है कि जो पाप में घसीट रहा है वह परमात्मा हो? और उस लड़के को कहा जाएगा, उस युवक को कहा जाएगा कि तेरी पत्नी है, तेरी साथिनी है, तेरी संगी है। लेकिन जो नरक में ले जा रही है! शास्त्रों में लिखा है कि स्त्री नरक का द्वार है। यह नरक का द्वार संगी और साथिनी? यह मेरा आधा अंग--यह नरक की तरफ जाता हुआ आधा अंग मेरा यह--इसके साथ कौन सा सामंजस्य बन सकता है?

सारी दुनिया का दांपत्य जीवन नष्ट किया है इस शिक्षा ने। और जब दांपति का जीवन नष्ट हो जाए तो प्रेम की कोई संभावना नहीं रही। क्योंकि जब पति और पत्नी प्रेम न कर सकें एक-दूसरे को, जो कि अत्यंत सहज और नैसर्गिक प्रेम है, तो फिर कौन और किसको प्रेम कर सकेगा? इस प्रेम को बढ़ाया जा सकता है कि पत्नी और पति का प्रेम इतना विकसित हो, इतना उदात्त हो, इतना ऊंचा बने कि धीरे-धीरे बांध तोड़ दे और दूसरों तक फैल जाए। यह हो सकता है। लेकिन इसको समाप्त ही कर दिया जाए, तोड़ ही दिया जाए, विषाक्त कर दिया जाए, तो फैलेगा क्या? बढ़ेगा क्या?

रामानुज एक गांव में ठहरे थे और एक आदमी ने आकर कहा कि मुझे परमात्मा को पाना है। तो उन्होंने कहा कि तूने कभी किसी को प्रेम किया है? उस आदमी ने कहा, इस झंझट में मैं कभी पड़ा ही नहीं। प्रेम वगैरह की झंझट में नहीं पड़ा। मुझे तो परमात्मा को खोजना है।

रामानुज ने कहा, तूने कभी झंझट ही नहीं की प्रेम की?

उसने कहा, मैं बिल्कुल सच कहता हूं आपसे।

और बेचारा ठीक ही कह रहा था। क्योंकि धर्म की दुनिया में प्रेम एक डिस-क्वालिफिकेशन है, एक अयोग्यता है। तो उसने सोचा कि अगर मैं कहां किसी को प्रेम किया है, तो वे कहेंगे, अभी प्रेम-ब्रेम छोड़, यह राग-वाग छोड़, पहले इन सबको छोड़ कर आ, तब इधर आना। तो उस बेचारे ने किया भी हो तो वह कहता गया कि मैंने नहीं किया है, नहीं किया है। ऐसा कौन आदमी होगा जिसने थोड़ा-बहुत प्रेम नहीं किया हो?

रामानुज ने तीसरी बार पूछा कि तू कुछ तो बता, थोड़ा-बहुत भी कभी भी किसी को?

उसने कहा, माफ करिए, आप क्यों बार-बार वही बात पूछे चले जा रहे हैं? मैंने प्रेम की तरफ आंख उठा कर नहीं देखा। मुझे तो परमात्मा को खोजना है।

तो रामानुज ने कहा, मुझे क्षमा कर, तू कहीं और खोज। क्योंकि मेरा अनुभव यह है कि अगर तूने किसी को प्रेम किया हो तो उस प्रेम को फिर इतना बड़ा जरूर किया जा सकता है कि वह परमात्मा तक पहुंच जाए। लेकिन अगर तूने प्रेम ही नहीं किया है तो तेरे पास कुछ है ही नहीं जिसको बड़ा किया जा सके। बीज ही नहीं है तेरे पास जो वृक्ष बन सके। तो तू जा, कहीं और पूछ।

और जब पति और पत्नी में प्रेम न हो, जिस पत्नी ने अपने पति को प्रेम न किया हो और जिस पति ने अपनी पत्नी को प्रेम न किया हो, वे बेटों को, बच्चों को प्रेम कर सकते हैं, तो आप गलती में हैं। पत्नी उसी मात्रा में बेटे को प्रेम करेगी जिस मात्रा में उसने अपने पति को प्रेम किया है। क्योंकि यह बेटा पति का ही फल है; उसका ही प्रतिफलन है, उसका ही रिफ्लेक्शन है। यह इस बेटे के प्रति जो प्रेम होने वाला है, वह उतना ही होगा, जितना उसने पति को चाहा और प्रेम किया हो। यह पति की ही मूर्ति है जो फिर नई होकर वापस लौट आई है।

अगर पति के प्रति प्रेम नहीं है, तो बेटे के प्रति प्रेम सच्चा कभी भी नहीं हो सकता। और अगर बेटे को प्रेम नहीं किया गया--पालना, पोसना और बड़ा कर देना प्रेम नहीं है--तो बेटा मां को कैसे प्रेम कर सकता है? बाप को कैसे प्रेम कर सकता है?

वह जो यूनिट है जीवन का, परिवार, वह विषाक्त हो गया है--सेक्स को दूषित कहने से, कंडेम करने से, निंदित करने से। और परिवार ही फैल कर पूरा जगत है, पूरा विश्व है। और फिर हम कहते हैं कि प्रेम! प्रेम बिल्कुल दिखाई नहीं पड़ता! प्रेम कैसे दिखाई पड़ेगा? हालांकि हर आदमी कहता है कि मैं प्रेम करता हूं। मां कहती है, पत्नी कहती है, बाप कहता है, भाई कहता है, बहन कहती है, मित्र कहते हैं कि हम प्रेम करते हैं। सारी दुनिया में हर आदमी कहता है कि हम प्रेम करते हैं। और दुनिया में इकट्ठा देखो तो प्रेम कहीं दिखाई ही नहीं पड़ता! इतने लोग अगर प्रेम करते हैं तो दुनिया में तो प्रेम की वर्षा हो जानी चाहिए थी; प्रेम के फूल ही फूल खिल जाने चाहिए थे; प्रेम के दीये ही दीये जल जाते, घर-घर प्रेम का दीया होता, तो दुनिया में इकट्ठी इतनी रोशनी होती प्रेम की।

लेकिन वहां तो घृणा की रोशनी दिखाई पड़ती है, क्रोध की रोशनी दिखाई पड़ती है, युद्धों की रोशनी दिखाई पड़ती है। प्रेम का तो कोई पता नहीं चलता। झूठी है यह बात! और यह झूठ जब तक हम मानते चले जाएंगे तब तक सत्य की दिशा में खोज भी नहीं हो सकती। कोई किसी को प्रेम नहीं कर रहा है। और जब तक काम के निसर्ग को परिपूर्ण आत्मा से स्वीकृति नहीं मिलती है, तब तक कोई किसी को प्रेम कर भी नहीं सकता है।

मैं आपसे कहना चाहता हूं कि काम दिव्य है, डिवाइन है। सेक्स की शक्ति परमात्मा की शक्ति है, ईश्वर की शक्ति है। और इसीलिए तो उससे ऊर्जा पैदा होती है और नया जीवन विकसित होता है। वही तो सबसे रहस्यपूर्ण शक्ति है, वही तो सबसे ज्यादा मिस्टीरियस फोर्स है। उससे दुश्मनी छोड़ दें। अगर आप चाहते हैं कि कभी आपके जीवन में प्रेम की वर्षा हो जाए, उससे दुश्मनी छोड़ दें। उसे आनंद से स्वीकार करें। उसकी पवित्रता को स्वीकार करें, उसकी धन्यता को स्वीकार करें। और खोजें उसमें और गहरे, और गहरे--तो आप हैरान हो जाएंगे! जितनी पवित्रता से काम की स्वीकृति होगी, उतना ही काम पवित्र होता चला जाता है; और जितनी अपवित्रता और पाप की दृष्टि से काम से विरोध होगा, काम उतना ही पापपूर्ण और कुरूप होता चला जाता है।

जब कोई अपनी पत्नी के पास ऐसे जाए जैसे कोई मंदिर के पास जाता है, जब कोई पत्नी अपने पति के पास ऐसे जाए जैसे सच में कोई परमात्मा के पास जाता है। क्योंकि जब दो प्रेमी काम से निकट आते हैं, जब वे संभोग से गुजरते हैं, तब सच में ही वे परमात्मा के मंदिर के निकट से गुजर रहे हैं। वहीं परमात्मा काम कर रहा है, उनकी उस निकटता में। वहीं परमात्मा की सृजन शक्ति काम कर रही है।

और मेरी अपनी दृष्टि यह है कि मनुष्य को समाधि का, ध्यान का जो पहला अनुभव मिला हो कभी भी मनुष्य के इतिहास में, तो वह संभोग के क्षण में मिला है और कभी नहीं। संभोग के क्षण में ही पहली बार यह स्मरण आया है आदमी को कि इतने आनंद की वर्षा हो सकती है। और जिन्होंने सोचा, जिन्होंने मेडिटेट किया, जिन लोगों ने काम के संबंध पर और मैथुन पर चिंतन किया और ध्यान किया, उन्हें यह दिखाई पड़ा कि काम के क्षण में, मैथुन के क्षण में, संभोग के क्षण में मन विचारों से शून्य हो जाता है। एक क्षण को मन के सारे विचार रुक जाते हैं। और वह विचारों का रुक जाना और वह मन का ठहर जाना ही आनंद की वर्षा का कारण होता है।

तब उन्हें सीक्रेट मिल गया, राज मिल गया कि अगर मन को विचारों से मुक्त किया जा सके किसी और विधि से भी, तो भी इतना ही आनंद मिल सकता है। और तब समाधि और योग की सारी व्यवस्थाएं विकसित

हुई, जिनमें ध्यान और सामायिक और मेडिटेशन और प्रेयर, इनकी सारी व्यवस्थाएं विकसित हुईं। इन सबके मूल में संभोग का अनुभव है। और फिर मनुष्य को अनुभव हुआ कि बिना संभोग में जाए भी चित्त शून्य हो सकता है। और जो रस की अनुभूति संभोग में हुई थी, वह बिना संभोग के भी बरस सकती है। फिर संभोग क्षणिक हो सकता है, क्योंकि शक्ति और ऊर्जा का वह निकास और बहाव है। लेकिन ध्यान सतत हो सकता है। तो मैं आपसे कहना चाहता हूं कि एक युगल संभोग के क्षण में जिस आनंद को अनुभव करता है, एक योगी चौबीस घंटे उस आनंद को अनुभव करने लगता है। लेकिन इन दोनों आनंदों में बुनियादी विरोध नहीं है। और इसलिए जिन्होंने कहा कि विषयानंद और ब्रह्मानंद भाई-भाई हैं, उन्होंने जरूर सत्य कहा है। वे सहोदर हैं, एक ही उदर से पैदा हुए हैं, एक ही अनुभव से विकसित हुए हैं। उन्होंने निश्चित ही सत्य कहा है।

तो पहला सूत्र आपसे कहना चाहता हूं : अगर चाहते हैं कि पता चले कि प्रेम-तत्त्व क्या है, तो पहला सूत्र है--काम की पवित्रता, दिव्यता, उसकी ईश्वरीय अनुभूति की स्वीकृति, उसको परम हृदय से, पूर्ण हृदय से अंगीकार। और आप हैरान हो जाएंगे, जितने परिपूर्ण हृदय से काम की स्वीकृति होगी, उतने ही आप काम से मुक्त होते चले जाएंगे। जितना अस्वीकार होता है, उतने ही हम बंधते हैं। जैसा वह फकीर कपड़ों से बंध गया। जितना स्वीकार होता है, उतने हम मुक्त होते हैं।

अगर परिपूर्ण स्वीकार है, टोटल एक्सेप्टबिलिटी है जीवन का जो निसर्ग है उसकी, तो आप पाएंगे कि वह परिपूर्ण स्वीकृति को मैं आस्तिकता कहता हूं, वही आस्तिकता व्यक्ति को मुक्त करती है।

नास्तिक मैं उनको कहता हूं जो जीवन के निसर्ग का अस्वीकार करते हैं, निषेध करते हैं--यह बुरा है, यह पाप है, यह विष है, यह छोड़ो, यह छोड़ो, यह छोड़ो। जो छोड़ने की बातें कर रहे हैं, वे ही नास्तिक हैं।

जीवन जैसा है, उसे स्वीकार करो और जीओ उसकी परिपूर्णता में। वही परिपूर्णता रोज-रोज सीढ़ियां-सीढ़ियां ऊपर उठाती जाती है। वही स्वीकृति मनुष्य को ऊपर ले जाती है। और एक दिन उसके दर्शन होते हैं, जिसका काम मैं पता भी नहीं चलता था। काम अगर कोयला था तो एक दिन हीरा भी प्रकट होता है प्रेम का। तो पहला सूत्र यह है।

दूसरा सूत्र आपसे कहना चाहता हूं। और वह दूसरा सूत्र भी संस्कृति ने और आज तक की सभ्यता ने और धर्मों ने हमारे भीतर मजबूत किया है। दूसरा सूत्र भी स्मरणीय है। क्योंकि पहला सूत्र तो काम की ऊर्जा को प्रेम बना देगा और दूसरा सूत्र द्वार की तरह रोके हुए है उस ऊर्जा को बहने से, वह बह नहीं पाएगी। वह दूसरा सूत्र है मनुष्य का यह भाव कि मैं हूं; ईगो, उसका अहंकार, कि मैं हूं। बुरे लोग तो कहते ही हैं कि मैं हूं। अच्छे लोग और जोर से कहते हैं कि मैं हूं--और मुझे स्वर्ग जाना है, और मोक्ष जाना है, और मुझे यह करना है, और मुझे वह करना है। लेकिन मैं--वह मैं खड़ा हुआ है वहां भीतर।

और जिस आदमी का मैं जितना मजबूत है, उतना ही उस आदमी की सामर्थ्य दूसरे से संयुक्त हो जाने की कम हो जाती है। क्योंकि मैं एक दीवाल है, एक घोषणा है कि मैं हूं। मैं की घोषणा कह देती है : तुम तुम हो, मैं मैं हूं। दोनों के बीच फासला है। फिर मैं कितना ही प्रेम करूं और आपको अपनी छाती से लगा लूं, लेकिन फिर भी हम दो हैं। छातियां कितनी ही निकट आ जाएं, फिर भी बीच में फासला है--मैं मैं हूं, तुम तुम हो। इसीलिए निकटतम अनुभव भी निकट नहीं ला पाते। शरीर पास बैठ जाते हैं, आदमी दूर-दूर बने रह जाते हैं। जब तक भीतर मैं बैठा हुआ है, तब तक दूसरे का भाव नष्ट नहीं होता।

सार्त्र ने कहीं एक अदभुत वचन कहा है। कहा है कि दि अदर इ.ज हेल। वह जो दूसरा है, वही नरक है। लेकिन सार्त्र ने यह नहीं कहा कि व्हाय दि अदर इ.ज अदर? वह दूसरा दूसरा क्यों है? वह दूसरा दूसरा इसलिए

है कि मैं मैं हूँ। और जब तक मैं मैं हूँ, तब तक दुनिया में हर चीज दूसरी है, अन्य है, भिन्न है। और जब तक भिन्नता है, तब तक प्रेम का अनुभव नहीं हो सकता।

प्रेम है एकात्म का अनुभव।

प्रेम है इस बात का अनुभव कि गिर गई दीवाल और दो ऊर्जाएं मिल गई और संयुक्त हो गई।

प्रेम है इस बात का अनुभव कि एक व्यक्ति और दूसरे व्यक्ति की सारी दीवालें गिर गई और प्राण संयुक्त हुए, मिले और एक हो गए।

जब यही अनुभव एक व्यक्ति और समस्त के बीच फलित होता है, तो उस अनुभव को मैं कहता हूँ--परमात्मा। और जब दो व्यक्तियों के बीच फलित होता है, तो उसे मैं कहता हूँ--प्रेम।

अगर मेरे और किसी दूसरे व्यक्ति के बीच यह अनुभव फलित हो जाए कि हमारी दीवालें गिर जाएं, हम किसी भीतर के तल पर एक हो जाएं, एक संगीत, एक धारा, एक प्राण, तो यह अनुभव है प्रेम। और अगर ऐसा ही अनुभव मेरे और समस्त के बीच घटित हो जाए कि मैं विलीन हो जाऊं और सब और मैं एक हो जाऊं, तो यह अनुभव है परमात्मा।

इसलिए मैं कहता हूँ : प्रेम है सीढ़ी और परमात्मा है उस यात्रा की अंतिम मंजिल। यह कैसे संभव है कि दूसरा मिट जाए? जब तक मैं न मिटूं तब तक दूसरा कैसे मिट सकता है? वह दूसरा पैदा किया है मेरे मैं की प्रतिध्वनि ने। जितने जोर से मैं चिल्लाता हूँ कि मैं, उतने ही जोर से वह दूसरा पैदा हो जाता है। वह दूसरी प्रतिध्वनि है, उस तरफ इको हो रही है मेरे मैं की। और यह अहंकार, यह ईगो द्वार पर दीवाल बन कर खड़ी है।

और मैं है क्या? कभी सोचा आपने कि यह मैं है क्या? आपका हाथ है मैं? आपका पैर है? आपका मस्तिष्क है? आपका हृदय है? क्या है आपका मैं?

अगर आप एक क्षण भी शांत होकर भीतर खोजने जाएंगे कि कहां है मैं, कौन सी चीज है मैं? तो आप एकदम हैरान रह जाएंगे--भीतर कोई मैं खोजे से मिलने को नहीं है। जितना गहरा खोजेंगे, उतना ही पाएंगे--भीतर एक सन्नाटा और शून्य है, वहां कोई आई नहीं, वहां कोई मैं नहीं, वहां कोई ईगो नहीं।

एक भिक्षु नागसेन को एक सम्राट मिलिंद ने निमंत्रण दिया था कि तुम आओ दरबार में। तो जो राजदूत गया था निमंत्रण देने, उसने नागसेन को कहा कि भिक्षु नागसेन, आपको बुलाया है सम्राट मिलिंद ने। मैं निमंत्रण देने आया हूँ। तो वह नागसेन कहने लगा, मैं चलूंगा जरूर; लेकिन एक बात विनय कर दूँ, पहले ही कह दूँ कि भिक्षु नागसेन जैसा कोई है नहीं। यह केवल एक नाम है, कामचलाऊ नाम है। आप कहते हैं तो मैं चलूंगा जरूर, लेकिन ऐसा कोई आदमी कहीं है नहीं।

राजदूत ने जाकर सम्राट को कह दिया कि बड़ा अजीब आदमी है वह। वह कहने लगा कि मैं चलूंगा जरूर, लेकिन ध्यान रहे कि भिक्षु नागसेन जैसा कहीं कोई है नहीं, यह केवल एक कामचलाऊ नाम है। सम्राट ने कहा, अजीब सी बात है, जब वह कहता है, मैं चलूंगा। आएगा वह!

वह आया भी रथ पर बैठ कर। सम्राट ने द्वार पर स्वागत किया और कहा, भिक्षु नागसेन, हम स्वागत करते हैं आपका। वह हंसने लगा। उसने कहा कि स्वागत स्वीकार करता हूँ, लेकिन स्मरण रहे, भिक्षु नागसेन जैसा कोई है नहीं।

सम्राट कहने लगा, बड़ी पहेली की बातें करते हैं आप। अगर आप नहीं हैं तो कौन है? कौन आया है यहां? कौन स्वीकार कर रहा है स्वागत? कौन दे रहा है उत्तर?

नागसेन मुड़ा और उसने कहा कि देखते हैं, सम्राट मिलिंद, यह रथ खड़ा है जिस पर मैं आया। सम्राट ने कहा, हां, यह रथ है। तो भिक्षु नागसेन पूछने लगा, घोड़ों को निकाल कर अलग कर लिया जाए। घोड़े अलग कर लिए गए। और उसने पूछा सम्राट से, ये घोड़े रथ हैं?

सम्राट ने कहा, घोड़े कैसे रथ हो सकते हैं? घोड़े अलग कर दिए गए। सामने के डंडे जिनसे घोड़े बंधे थे, खिंचवा लिए गए। और उसने पूछा कि ये रथ हैं?

सिर्फ दो डंडे कैसे रथ हो सकते हैं? डंडे अलग कर दिए गए। चाक निकलवा लिए और कहा, ये रथ हैं?

सम्राट ने कहा, ये चाक हैं, ये रथ नहीं हैं।

और एक-एक अंग रथ का निकलता चला गया। और एक-एक अंग पर सम्राट को कहना पड़ा कि नहीं, ये रथ नहीं हैं। फिर आखिर पीछे शून्य बच गया, वहां कुछ भी न बचा। भिक्षु नागसेन पूछने लगा, रथ कहां है अब? रथ कहां है अब? और जितनी चीजें मैंने निकालीं, तुमने कहा, ये भी रथ नहीं! ये भी रथ नहीं! ये भी रथ नहीं! अब रथ कहां है?

तो सम्राट चौंक कर खड़ा रह गया--रथ पीछे बचा भी नहीं था और जो चीजें निकल गई थीं उनमें कोई रथ था भी नहीं।

तो वह भिक्षु कहने लगा, समझे आप? रथ एक जोड़ था। रथ कुछ चीजों का संग्रह मात्र था। रथ का अपना होना नहीं है कोई, ईगो नहीं है कोई। रथ एक जोड़ है।

आप खोजें--कहां है आपका मैं? और आप पाएंगे कि अनंत शक्तियों के एक जोड़ हैं; मैं कहीं भी नहीं है। और एक-एक अंग आप सोचते चले जाएं तो एक-एक अंग समाप्त होता चला जाता है, फिर पीछे शून्य रह जाता है।

उसी शून्य से प्रेम का जन्म होता है, क्योंकि वह शून्य आप नहीं हैं, वह शून्य परमात्मा है।

एक गांव में एक आदमी ने मछलियों की एक दुकान खोली थी। बड़ी दुकान थी, उस गांव में पहली दुकान थी। तो उसने एक बहुत खूबसूरत तख्ती बनवाई और उस पर लिखाया--फ्रेश फिश सोल्ड हियर--यहां ताजी मछलियां बेची जाती हैं।

पहले ही दिन दुकान खुली और एक आदमी आया और कहने लगा, फ्रेश फिश सोल्ड हियर? ताजी मछलियां? कहीं बासी मछलियां भी बेची जाती हैं? ताजी लिखने की क्या जरूरत?

दुकानदार ने सोचा कि बात तो ठीक है। इससे और व्यर्थ बासे का भी ख्याल पैदा होता है। उसने फ्रेश अलग कर दिया, ताजा अलग कर दिया। तख्ती रह गई--फिश सोल्ड हियर--मछलियां यहां बेची जाती हैं।

दूसरे दिन एक बूढ़ी औरत आई और उसने कहा कि मछलियां यहां बेची जाती हैं--सोल्ड हियर? कहीं और कहीं भी बेचते हो?

उस आदमी ने कहा कि यह हियर बिल्कुल फिजूल है। उसने तख्ती पर एक शब्द और अलग कर दिया, रह गया--फिश सोल्ड।

तीसरे दिन एक आदमी आया और वह कहने लगा, फिश सोल्ड? मछलियां बेची जाती हैं? मुफ्त भी देते हो क्या?

उस आदमी ने कहा, यह सोल्ड भी बेकार है। उस सोल्ड को भी अलग कर दिया। अब रह गई वहां तख्ती--फिश।

एक बुढ़ा आया और कहने लगा, फिश? अंधे को भी मील भर दूर से बास मिल जाती है। यह तख्ती काहे के लिए लटकाई हुई है यहां?

फिश भी चली गई। खाली तख्ती रह गई वहां।

और एक आदमी आया और उसने कहा, यह तख्ती किसलिए लगाई है? इससे दुकान पर आड़ पड़ती है।

वह तख्ती भी चली गई, वहां कुछ भी नहीं रह गया। इलीमिनेशन होता गया। एक-एक चीज हटती चली गई। पीछे जो शेष रह गया--शून्य।

उस शून्य से प्रेम का जन्म होता है, क्योंकि उस शून्य में दूसरे के शून्य से मिलने की क्षमता है। सिर्फ शून्य ही शून्य से मिल सकता है, और कोई नहीं। दो शून्य मिल सकते हैं, दो व्यक्ति नहीं। दो इंडिविजुअल नहीं मिल सकते; दो वैक्यूम, दो एंटीनेस मिल सकते हैं, क्योंकि बाधा अब कोई भी नहीं है। शून्य की कोई दीवाल नहीं होती, और हर चीज की दीवाल होती है।

तो दूसरी बात स्मरणीय है : व्यक्ति जब मिटता है, नहीं रह जाता; पाता है कि हूं ही नहीं; जो है वह मैं नहीं हूं, जो है वह सब है; तब द्वार गिरता है, दीवाल टूटती है। और तब वह गंगा बहती है जो भीतर छिपी है और तैयार है। वह शून्य की प्रतीक्षा कर रही है कि कोई शून्य हो जाए तो उससे बह उठे।

हम एक कुआं खोदते हैं। पानी भीतर है; पानी कहीं से लाना नहीं होता। लेकिन बीच में मिट्टी-पत्थर पड़े हैं, उनको निकाल कर बाहर कर देते हैं। करते क्या हैं हम? करते हैं हम--एक शून्य बनाते हैं, एक खाली जगह बनाते हैं, एक एंटीनेस बनाते हैं। कुआं खोदने का मतलब है खाली जगह बनाना। ताकि खाली जगह में, जो भीतर छिपा हुआ पानी है, वह प्रकट होने के लिए जगह पा जाए, स्पेस पा जाए। वह भीतर है, उसको जगह चाहिए प्रकट होने को। जगह नहीं मिल रही है; भरा हुआ है कुआं मिट्टी-पत्थर से। मिट्टी-पत्थर हमने अलग कर दिए, वह पानी उबल कर बाहर आ गया।

आदमी के भीतर प्रेम भरा हुआ है। स्पेस चाहिए, जगह चाहिए, जहां वह प्रकट हो जाए।

और हम भरे हुए हैं अपने में से। हर आदमी चिल्लाए चला जा रहा है--मैं। और स्मरण रखें, जब तक आपकी आत्मा चिल्लाती है मैं, तब तक आप मिट्टी-पत्थर से भरे हुए कुएं हैं। आपके कुएं में प्रेम के झरने नहीं फूटेंगे, नहीं फूट सकते हैं।

मैंने सुना है, एक बहुत पुराना वृक्ष था। आकाश में सम्राट की तरह उसके हाथ फैले हुए थे। उस पर फूल आते थे तो दूर-दूर से पक्षी सुगंध लेने आते। उस पर फल लगते थे तो तितलियां उड़तीं। उसकी छाया, उसके फैले हाथ, हवाओं में उसका वह खड़ा रूप आकाश में बड़ा सुंदर था। एक छोटा बच्चा उसकी छाया में रोज खेलने आता था। और उस बड़े वृक्ष को उस छोटे बच्चे से प्रेम हो गया। बड़ों को छोटों से प्रेम हो सकता है, अगर बड़ों को पता न हो कि हम बड़े हैं। वृक्ष को कोई पता नहीं था कि मैं बड़ा हूं--यह पता सिर्फ आदमी को होता है--इसलिए उसका प्रेम हो गया।

अहंकार हमेशा अपने से बड़ों को प्रेम करने की कोशिश करता है। अहंकार हमेशा अपने से बड़ों से संबंध जोड़ता है। प्रेम के लिए कोई बड़ा-छोटा नहीं। जो आ जाए, उसी से संबंध जुड़ जाता है।

वह एक छोटा सा बच्चा खेलता आता था उस वृक्ष के पास; उस वृक्ष का उससे प्रेम हो गया। लेकिन वृक्ष की शाखाएं ऊपर थीं, बच्चा छोटा था, तो वृक्ष अपनी शाखाएं उसके लिए नीचे झुकाता, ताकि वह फल तोड़ सके, फूल तोड़ सके।

प्रेम हमेशा झुकने को राजी है, अहंकार कभी भी झुकने को राजी नहीं है। अहंकार के पास जाएंगे तो अहंकार के हाथ और ऊपर उठ जाएंगे, ताकि आप उन्हें छू न सकें। क्योंकि जिसे छू लिया जाए वह छोटा आदमी है; जिसे न छुआ जा सके, दूर सिंहासन पर दिल्ली में हो, वह आदमी बड़ा आदमी है।

वह वृक्ष की शाखाएं नीचे झुक आतीं जब वह बच्चा खेलता हुआ आता! और जब बच्चा उसके फूल तोड़ लेता, तो वह वृक्ष बहुत खुश होता। उसके प्राण आनंद से भर जाते।

प्रेम जब भी कुछ दे पाता है, तब खुश हो जाता है।

अहंकार जब भी कुछ ले पाता है, तभी खुश होता है।

फिर वह बच्चा बड़ा होने लगा। वह कभी उसकी छाया में सोता, कभी उसके फल खाता, कभी उसके फूलों का ताज बना कर पहनता और जंगल का सम्राट हो जाता।

प्रेम के फूल जिसके पास भी बरसते हैं, वही सम्राट हो जाता है। और जहां भी अहंकार घिरता है, वहीं सब अंधकार हो जाता है, आदमी दीन और दरिद्र हो जाता है।

वह लड़का फूलों का ताज पहनता और नाचता, और वृक्ष बहुत खुश होता, उसके प्राण आनंद से भर जाते। हवाएं सनसनातीं और वह गीत गाता।

फिर लड़का और बड़ा हुआ। वह वृक्ष के ऊपर भी चढ़ने लगा, उसकी शाखाओं से झूलने भी लगा। वह उसकी शाखाओं पर विश्राम भी करता, और वृक्ष बहुत आनंदित होता।

प्रेम आनंदित होता है, जब प्रेम किसी के लिए छाया बन जाता है।

अहंकार आनंदित होता है, जब किसी की छाया छीन लेता है।

लेकिन लड़का बड़ा होता चला गया, दिन बढ़ते चले गए। जब लड़का बड़ा हो गया तो उसे और दूसरे काम भी दुनिया में आ गए, महत्वाकांक्षाएं आ गईं। उसे परीक्षाएं पास करनी थीं, उसे मित्रों को जीतना था। वह फिर कभी-कभी आता, कभी नहीं भी आता, लेकिन वृक्ष उसकी प्रतीक्षा करता कि वह आए, वह आए। उसके सारे प्राण पुकारते कि आओ, आओ!

प्रेम निरंतर प्रतीक्षा करता है कि आओ, आओ! प्रेम एक प्रतीक्षा है, एक अवेटिंग है।

लेकिन वह कभी आता, कभी नहीं आता, तो वृक्ष उदास हो जाता।

प्रेम की एक ही उदासी है--जब वह बांट नहीं पाता, तो उदास हो जाता है। जब वह दे नहीं पाता, तो उदास हो जाता है। और प्रेम की एक ही धन्यता है कि जब वह बांट देता है, लुटा देता है, तो वह आनंदित हो जाता है।

फिर लड़का और बड़ा होता चला गया और वृक्ष के पास आने के दिन कम होते चले गए। जो आदमी जितना बड़ा होता चला जाता है महत्वाकांक्षा के जगत में, प्रेम के निकट आने की सुविधा उतनी ही कम होती चली जाती है। उस लड़के की एंबीशन, महत्वाकांक्षा बढ़ रही थी। कहां वृक्ष! कहां जाना!

फिर एक दिन वहां से निकलता था तो वृक्ष ने उसे कहा, सुनो! हवाओं में उसकी आवाज गूंजी कि सुनो, तुम आते नहीं, मैं प्रतीक्षा करता हूं! मैं तुम्हारे लिए प्रतीक्षा करता हूं, राह देखता हूं, बाट जोहता हूं!

उस लड़के ने कहा, क्या है तुम्हारे पास जो मैं आऊं? मुझे रुपये चाहिए!

हमेशा अहंकार पूछता है कि क्या है तुम्हारे पास जो मैं आऊं? अहंकार मांगता है कि कुछ हो तो मैं आऊं। न कुछ हो तो आने की कोई जरूरत नहीं। अहंकार एक प्रयोजन है, एक परप.ज है। प्रयोजन पूरा होता हो तो मैं आऊं! अगर कोई प्रयोजन न हो तो आने की जरूरत क्या है!



और प्रेम निष्प्रयोजन है। प्रेम का कोई प्रयोजन नहीं। प्रेम अपने में ही अपना प्रयोजन है, वह बिल्कुल परप.जलेस है।

वृक्ष तो चौंक गया। उसने कहा कि तुम तभी आओगे जब मैं कुछ तुम्हें दे सकूँ? मैं तुम्हें सब दे सकता हूँ। क्योंकि प्रेम कुछ भी रोकना नहीं चाहता। जो रोक ले वह प्रेम नहीं है। अहंकार रोकता है। प्रेम तो बेशर्त दे देता है। लेकिन रुपये मेरे पास नहीं हैं। ये रुपये तो सिर्फ आदमी की ईजाद है, वृक्षों ने यह बीमारी नहीं पाली है।

उस वृक्ष ने कहा, इसीलिए तो हम इतने आनंदित होते हैं, इतने फूल खिलते हैं, इतने फल लगते हैं, इतनी बड़ी छाया होती है; हम इतना नाचते हैं आकाश में, हम इतने गीत गाते हैं; पक्षी हम पर आते हैं और संगीत का कलरव करते हैं; क्योंकि हमारे पास रुपये नहीं हैं। जिस दिन हमारे पास भी रुपये हो जाएंगे, हम भी आदमी जैसे दीन-हीन मंदिरों में बैठ कर सुनेंगे कि शांति कैसे पाई जाए, प्रेम कैसे पाया जाए। नहीं-नहीं, हमारे पास रुपये नहीं हैं।

तो उसने कहा, फिर मैं क्या आऊँ तुम्हारे पास! जहाँ रुपये हैं, मुझे वहाँ जाना पड़ेगा। मुझे रुपयों की जरूरत है।

अहंकार रुपया मांगता है, क्योंकि रुपया शक्ति है। अहंकार शक्ति मांगता है।

उस वृक्ष ने बहुत सोचा, फिर उसे ख्याल आया--तो तुम एक काम करो, मेरे सारे फलों को तोड़ कर ले जाओ और बेच दो तो शायद रुपये मिल जाएं।

और उस लड़के को भी ख्याल आया। वह चढ़ा और उसने सारे फल तोड़ डाले। कच्चे भी गिरा डाले। शाखाएं भी टूटीं, पत्ते भी टूटे। लेकिन वृक्ष बहुत खुश हुआ, बहुत आनंदित हुआ।

टूट कर भी प्रेम आनंदित होता है।

अहंकार पाकर भी आनंदित नहीं होता, पाकर भी दुखी होता है।

और उस लड़के ने तो धन्यवाद भी नहीं दिया पीछे लौट कर।

लेकिन उस वृक्ष को पता भी नहीं चला। उसे तो धन्यवाद मिल गया इसी में कि उसने उसके प्रेम को स्वीकार किया और उसके फलों को ले गया और बाजार में बेचा।

लेकिन फिर वह बहुत दिनों तक नहीं आया। उसके पास रुपये थे और रुपयों से रुपये पैदा करने की वह कोशिश में लग गया था। वह भूल गया। वर्ष बीत गए। और वृक्ष उदास है और उसके प्राणों में रस बह रहा है कि वह आए उसका प्रेमी और उसके रस को ले जाए। जैसे किसी मां के स्तन में दूध भरा हो और उसका बेटा खो गया हो, और उसके सारे प्राण तड़प रहे हों कि उसका बेटा कहां है जिसे वह खोजे, जो उसे हलका कर दे, निर्भर कर दे। ऐसे उस वृक्ष के प्राण पीड़ित होने लगे कि वह आए, आए, आए! उसकी सारी आवाज यही गूंजने लगी कि आओ!

बहुत दिनों के बाद वह आया। अब वह लड़का तो प्रौढ़ हो गया था। वृक्ष ने उससे कहा कि आओ मेरे पास! मेरे आलिंगन में आओ!

उसने कहा, छोड़ो यह बकवास। ये बचपन की बातें हैं।

अहंकार प्रेम को पागलपन समझता है, बचपन की बातें समझता है।

उस वृक्ष ने कहा, आओ, मेरी डालियों से झूलो! नाचो!

उसने कहा, छोड़ो ये फिजूल की बातें। मुझे एक मकान बनाना है। मकान दे सकते हो तुम?

वृक्ष ने कहा, मकान? हम तो बिना मकान के ही रहते हैं। मकान में तो सिर्फ आदमी रहता है। दुनिया में और कोई मकान में नहीं रहता, सिर्फ आदमी रहता है। सो देखते हो आदमी की हालत--मकान में रहने वाले आदमी की हालत? उसके मकान जितने बड़े होते जाते हैं, आदमी उतना छोटा होता चला जाता है। हम तो बिना मकान के रहते हैं। लेकिन एक बात हो सकती है कि तुम मेरी शाखाओं को काट कर ले जाओ तो शायद तुम मकान बना लो।

और वह प्रौढ़ कुल्हाड़ी लेकर आ गया और उसने उस वृक्ष की शाखाएं काट डालीं! वृक्ष एक टूट रह गया, नंगा। लेकिन वृक्ष बहुत आनंदित था।

प्रेम सदा आनंदित है, चाहे उसके अंग भी कट जाएं। लेकिन कोई ले जाए, कोई ले जाए, कोई बांट ले, कोई सम्मिलित हो जाए, साझीदार हो जाए।

और उस लड़के ने तो पीछे लौट कर भी नहीं देखा! उसने मकान बना लिया।

और वक्त गुजरता गया। वह टूट राह देखता, वह चिल्लाना चाहता, लेकिन अब उसके पास पत्ते भी नहीं थे, शाखाएं भी नहीं थीं। हवाएं आतीं और वह बोल भी न पाता, बुला भी न पाता। लेकिन उसके प्राणों में तो एक ही गूंज थी--कि आओ! आओ!

और बहुत दिन बीत गए। तब वह बूढ़ा आदमी हो गया था वह बच्चा। वह निकल रहा था पास से। वृक्ष के पास आकर खड़ा हो गया। तो वृक्ष ने पूछा--क्या कर सकता हूं और मैं तुम्हारे लिए? तुम बहुत दिनों बाद आए!

उसने कहा, तुम क्या कर सकोगे? मुझे दूर देश जाना है धन कमाने के लिए। मुझे एक नाव की जरूरत है!

तो उसने कहा, तुम मुझे और काट लो तो मेरी इस पींड से नाव बन जाएगी। और मैं बहुत धन्य होऊंगा कि मैं तुम्हारी नाव बन सकूं और तुम्हें दूर देश ले जा सकूं। लेकिन तुम जल्दी लौट आना और सकुशल लौट आना। मैं तुम्हारी प्रतीक्षा करूंगा।

और उसने आरे से उस वृक्ष को काट डाला। तब वह एक छोटा सा टूट रह गया। और वह दूर यात्रा पर निकल गया। और वह टूट भी प्रतीक्षा करता रहा कि वह आए, आए। लेकिन अब उसके पास कुछ भी नहीं है देने को। शायद वह नहीं आएगा, क्योंकि अहंकार वहीं आता है जहां कुछ पाने को है, अहंकार वहां नहीं जाता जहां कुछ पाने को नहीं है।

मैं उस टूट के पास एक रात मेहमान हुआ था, तो वह टूट मुझसे बोला कि वह मेरा मित्र अब तक नहीं आया! और मुझे बड़ी पीड़ा होती है कि कहीं नाव डूब न गई हो, कहीं वह भटक न गया हो, कहीं किसी दूर किनारे पर विदेश में कहीं भूल न गया हो, कहीं वह डूब न गया हो, कहीं वह समाप्त न हो गया हो! एक खबर भर कोई मुझे ला दे--अब मैं मरने के करीब हूं--एक खबर भर आ जाए कि वह सकुशल है, फिर कोई बात नहीं! फिर सब ठीक है! अब तो मेरे पास देने को कुछ भी नहीं है, इसलिए बुलाऊं भी तो शायद वह नहीं आएगा, क्योंकि वह लेने की ही भाषा समझता है।

अहंकार लेने की भाषा समझता है।

प्रेम देने की भाषा है।

इससे ज्यादा और कुछ मैं नहीं कहूंगा।

जीवन एक ऐसा वृक्ष बन जाए और उस वृक्ष की शाखाएं अनंत तक फैल जाएं, सब उसकी छाया में हों और सब तक उसकी बांहें फैल जाएं, तो पता चल सकता है कि प्रेम क्या है।

प्रेम का कोई शास्त्र नहीं है, न कोई परिभाषा है, न प्रेम का कोई सिद्धांत है।

तो मैं बहुत हैरानी में था कि क्या कहूंगा आपसे कि प्रेम क्या है। वह तो बताना मुश्किल है। आकर बैठ सकता हूं--अगर मेरी आंखों में दिखाई पड़ जाए तो दिखाई पड़ सकता है, अगर मेरे हाथों में दिखाई पड़ जाए तो दिखाई पड़ सकता है। मैं कह सकता हूं--यह है प्रेम।

लेकिन प्रेम क्या है, अगर मेरी आंख में न दिखाई पड़े, मेरे हाथ में न दिखाई पड़े, तो शब्दों से बिल्कुल भी दिखाई नहीं पड़ सकता है कि प्रेम क्या है!

मेरी बातों को इतने प्रेम और शांति से सुना, उससे बहुत-बहुत अनुगृहीत हूं। और अंत में सबके भीतर बैठे परमात्मा को प्रणाम करता हूं, मेरे प्रणाम स्वीकार करें।